भारतीय धर्म एवं वैष्णव सम्प्रदाय

देवर्षि कलानाथ शास्त्री

(राष्ट्रपति सम्मानित), प्रधान सम्पादक ''भारती''संस्कृत मासिक
पीठाचार्य, भाषामीमांसा एवं शास्त्रशोध पीठ - विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर
पूर्व अध्यक्ष - राजस्थान संस्कृत अकादमी
आधुनिक संस्कृत पीठ - जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय
पूर्व निदेशक - संस्कृत शिक्षा एवं भाषा विभाग, राजस्थान सरकार
सदस्य - संस्कृत आयोग, भारत सरकार

वैष्णव भक्ति के चार आचार्य प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने ब्रह्मसूत्रों (बादरायण रचित वेदान्त सूत्रों) पर अपने-अपने भाष्य लिख कर अपने-अपने दार्शनिक सम्प्रदाय चलाए तथा भक्ति के सम्प्रदायों का सूत्रपात किया। रामानुज (12वीं सदी) ने श्रीभाष्य लिखा और विशिष्टाद्वैत नामक सम्प्रदाय चलाया, जो दक्षिण में तो सुप्रचलित है ही, उत्तर भारत में और राजस्थान में भी इसका पर्याप्त प्रभाव है। निम्बार्क (13वीं सदी) ने वेदान्तपारिजात भाष्य लिखा और द्वैताद्वैत मत चलाया। माध्व ने पूर्णप्रज्ञभाष्य लिखा और द्वैत मत चलाया। इसका अनुसरण करते हुए चैतन्य महाप्रभु (16वीं सदी) ने गौडीय सम्प्रदाय का भक्तिमार्ग प्रवर्तित किया, जो बंगाल में प्रारम्भ हुआ, वृन्दावन में फैला और राजस्थान में भी बहुत पनपा। इसी संप्रदाय के एक विद्वान बलदेव विद्याभूषण ने (1725 ई.) (कहा जाता है कि जयपुर में) गोविंद-भाष्य लिख कर संप्रदाय को 'अचिन्त्य-भेदाभेद' नाम दिया। वल्लभाचार्य (15वीं सदी) ने अणुभाष्य लिख कर शुद्धाद्वैत मत प्रतिपादित किया और पुष्टिमार्ग चलाया, जिसका प्रमुख अनुयायिवर्ग गुजरात और राजस्थान में है।

रामभक्ति-रामानन्द सम्प्रदाय

वैष्णव संप्रदायों का राजस्थान में बहुत प्रसार हुआ। रामानुज संप्रदाय की एक प्रमुख गद्दी जयपुर में (तत्कालीन आमेर राज्य में) गलता नामक स्थान में थी। इसकी परम्परा अब तक वहाँ चली आ रही है और जयपुर बसने से पूर्व के अनेक मन्दिर वहाँ अब भी देखे जा सकते हैं। इसी कारण विशिष्टाद्वैत संप्रदाय का पीठ होने से उत्तर तोताद्रि' (उत्तर भारत में रामानुज का प्रमुख पीठ) भी कहा जाने लगा था। इसी वैष्णव संप्रदाय का अनुसरण करने वाले रामानन्द

(1400-1470) ने अपनी उप-शाखा उत्तर भारत में चलायी थी। रामानंदी संप्रदाय उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध हुआ। कबीर स्वयं रामानंद के शिष्य थे, पर उनका मन निर्गुण भक्ति की ओर झुक गया, जबकि रामानंदी संप्रदाय में राम की सगुण भक्ति चलती रही । रामानंद की शिष्यपरंपरा में जयपुर (आमेर) के पयआहारी स्वामी थे, जिन्होंने इस प्रदेश मे नाथों का प्रभाव समाप्त कर रामानंदी भक्तिपरंपरा प्रवाहित की । उनके शिष्य अग्रदास जी (16वीं सदी का मध्य) यहीं हुए जो बाद में सीकर के पास रेवासा नामक गाँव चले गये और वहाँ उन्होंने अपनी गद्दी स्थापित की, जो आज तक चली आ रही है।

अग्रदास जी सांस्कृतिक इतिहास में राम की मधुर भक्ति के प्रवर्तक के रूप में विख्यात हैं। इन्होंने रामभक्ति पर अनेक हिन्दी काव्य लिखे हैं। गलता में रामानंद के शिष्य कील्हदास जी (16वीं सदी) रहे जिन्होंने यहाँ के मन्दिरों में रामानन्दी भक्ति संप्रदाय सुदृढ़ किया । इस शाखा की यह विशेषता है, कि यहाँ राम की भक्ति और पूजा कृष्ण की भाँति रागात्मिका या माधुर्यलक्षणा भक्ति के रूप में, उन्हें एक रसिक नायक मानते हुए की जाती है। जुगल सरकार (सीता व राम) की श्रृंगारिक जोड़ी पूजी जाती है तथा राम-सीता की रासलीला आदि मधुर लीलाएँ उनके साथ जोड़ दी गयी हैं। रामभक्ति की यह मधुर शाखा यहाँ की विशिष्ट देन है, जिसे सवाई जयसिंह 1743) ने भी प्रश्रय दिया और अपने राजकवि श्रीकृष्णभट्ट कवि से 'राम रासा' (राम की रास लीला) लिखवाया। रामानंद के प्रिय शिष्यों द्वारा स्थापित शाखाओं में एक रामस्नेही संप्रदाय भी है, जिसका रुझान निर्गुण भक्ति की ओर हो गया। किन्तु इनकी प्रमुख गद्दियाँ भी राजस्थान में ही हैं ।

कृष्ण भक्ति-वल्लभ संप्रदाय

राजस्थान में कृष्णभक्ति की परंपरा बहुत पुरानी है। चित्तौड़ के निकट घोसुंडी गांव में प्राप्त द्वितीय शती ई. पू. के एक शिलालेख में संकर्षण वासुदेव की पूजा का उल्लेख मिलता है। जोधपुर के निकट मंडौर में भी गुप्तकालीन शिला-लेखों में कृष्ण लीला चित्रित है। राजस्थान में ब्रजमण्डल का प्रभाव तभी से आने लगा, जब दिल्ली की मुगल सल्तनत से जयपुर, जोधपुर आदि के राजवंशों ने संबंध स्थापित किया और आगरे के शाही दरबार में उनका आना-जाना होने लगा। जयपुर के राजाओं ने वृन्दावन जैसे स्थानों पर कृष्णमन्दिर बनवाये और कृष्णभक्ति के आचार्यों के प्रति श्रद्धा दिखलायी । औरंगजेब जैसे बादशाहों की अनुदार नीति के कारण मुगल-साम्राज्य के आधिपत्य वाले नगरों से आचार्यों ने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी आराध्यमूर्तियों को हटा कर देशी रियासतों के राजाओं के संरक्षण में ले जाना

श्रेयस्कर समझा । ऐसी ही एक घटना वल्लभाचार्य के आराध्य श्रीनाथ जी का गिरिराज (गोवर्धन) से निकल कर सितम्बर 30 सन् 1669 को गोस्वामी दामोदर जी तथा उनके चाचा गोविन्द जी द्वारा राजस्थान लाना तथा अन्ततः 10, फरवरी, 1872 को सीहाड़ गाँव में उसका स्थापन करना रही। तभी से सिहाड गाँव श्रीनाथद्वारा कहलाने लगा और वल्लभाचार्य का प्रमुख पीठ हो गया।

इस संप्रदाय के इस मुख्य पीठ के अतिरिक्त जो गत तीन सदियों से भी अधिक समय से राजस्थान में है, पुष्टिमार्ग के सात प्रमुख पीठ हैं जो वल्लभाचार्य के पुत्र गुसाईं विट्ठलदास जी (1515-1585 ई.) के सात उत्तराधिकारियों ने अपने-अपने आराध्य देवविग्रहों (मूर्तियों, जिन्हें निधि या स्वरूप कहा जाता है) के नाम पर स्थापित किये थे। यह उल्लेखनीय है, कि इनमें से अधिकांश पीठ राजस्थान में स्थित हैं। प्रथम पीठ मथुरेश जी (जिन्हें बड़े मथुरेश जी कहा जाता है) का है, जो कोटा में है। द्वितीय विट्ठलनाथ जी का है, जो नाथद्वारा (उदयपुर) में है। तृतीय द्वारकाधीश जी का है, जो नाथद्वारा के निकट ही काँकरोली में है।

चतुर्थ गोकुलनाथ जी का है, जो गोकुल में है। यह स्थान वैसे तो उत्तरप्रदेश की परिधि में है, पर राजस्थान के भरतपुर जिले के कामवन नगर के बहुत निकट है। कामवन में पंचम और सप्तम पीठ स्थित हैं, जिन्हें क्रमशः गोकुलचन्द्रजी और मदनमोहनजी का पीठ कहा जाता है । आजकल छठा पीठ जो बालकृष्ण जी का है, सूरत (गुजरात) में स्थित है। वैसे औरंगजेब की हिन्दू मन्दिरों और मूर्तियों के विरोध की नीति के कारण अपना मूल स्थान छोड़ कर चतुर्थ, पंचम और सप्तम पीठ के आचार्य अपने आराध्यों की मूर्तियाँ लेकर जयपुर आये थे, जहाँ वे अनेक वर्ष रहे भी, किन्तु बाद में पंचम और सप्तम स्वरूप बीकानेर होते हुए कामवन आ गये ।

इस प्रकार आज भी पुष्टिमार्गीय भक्तिधारा के अधिकांश 'स्वरूप' राजस्थान में स्थित हैं और ऐतिहासिक कारणों से बनी यह विशिष्ट स्थिति इस भक्तिधारा को इस धारा से अविभाज्य रूप में जोड़ चुकी है। किशनगढ़ का राजवंश इस संप्रदाय का अनुयायी हो गया था। संवत् 1576 में जन्मे सावंतसिंह ने तो कृष्णभक्ति में राजपाट का त्याग कर वृन्दावन वास शुरू कर दिया था तथा अपना नाम नागरीदास रख लिया था । गोस्वामी रणछोड़दास जी से दीक्षा लेकर ब्रजभाषा में उत्कृष्ट भक्तिरचना की थी । बनी ठनी जू जो राधिका का भी विशेषण है और इनकी उप-पत्नी का नाम भी बताया जाता है, इनके साथ ही भक्तिरचना करती थी। इससे राधिका का यह चित्र इतिहास में प्रसिद्ध हो गया । वर्तमान में 41 प्रमुख पुष्टिमार्गीय मन्दिर राजस्थान में हैं। तीन चार सदियों से इस भूमि पर बहने वाली इस भक्तिधारा ने

यहाँ की संस्कृति को बहुत प्रभावित किया है तथा अनेक रूपों में ब्रज-संस्कृति और रागानुगा भक्ति की छाप इस पर छोड़ी है। इस संप्रदाय में मूर्तियों की प्राणप्रतिष्ठा या स्थापना न कर उनमें बाल भाव की उपासना 'सेवा' के रूप में की जाती है। मन्दिर भी 'हवेली' कहे जाते हैं, जिनका संगीत 'हवेली संगीत' के नाम से प्रसिद्ध है।

निम्बार्क-संप्रदाय

वैष्णव संप्रदायों में एक प्रमुख संप्रदाय आचार्य निम्बार्क का है, जिसका प्रमुख पीठ भी वर्तमान में किशनगढ़ (अजमेर जिला) के पास सलेमाबाद नामक ग्राम में स्थित है। अन्य वैष्णव संप्रदायों की भांति निम्बार्क संप्रदाय का भी प्रमुख प्रसार वृन्दावन में हुआ (मुगलकाल में) जहाँ हरिव्यास-देवाचार्य जी ने संप्रदाय के पीठों का सुनियोजित पुनर्गठन कर बारह शिष्यों को संप्रदाय के प्रसार का कार्य सौंपा था। इनके प्रमुख शिष्य परशुराम-देवाचार्य जी थे, जो जयपुर राज्यान्तर्गत नारनौल के समीप गौड ब्राह्मण परिवार में जन्मे थे और कुछ समय मथुरा के नारदटीला पर साधना कर निम्बार्क संप्रदाय की प्रमुख गद्दी राजस्थान में ले गये । पुष्कर में कुछ चमत्कारी पीर लोगों को दिग्भ्रान्त करते थे, अतः उन्हें अपने योगबल से परास्त कर वहाँ इस वैष्णव पीठ की स्थापना इन्होंने आवश्यक समझी, ऐसा माना जाता है। तब से (16वीं सदी के आसपास) अजमेर के पास सलेमाबाद में पीठ स्थित है। 'परशुरामसागर' आदि अनेक भक्तिग्रन्थों में परशुराम जी ने राजस्थानी मिश्रित हिन्दी में काव्यरचना की ।

राजस्थान में इस संप्रदाय का प्रसार हुआ। वर्तमान में उदयपुर में भी निम्बार्क पीठ है तथा जयपुर आदि नगरों में स्थान-स्थान पर इस संप्रदाय के राधाकृष्ण के मन्दिर हैं। इस संप्रदाय में राधा को कृष्ण की स्वकीया (परिणीता) माना जाता है और युगलस्वरूप की मधुर सेवा की जाती है। समय-समय पर राजस्थान की देशी रियासतों के अनेक राजवंशों ने भी इस संप्रदाय के प्रति अपनी भक्ति प्रकट की । जयपुरनरेश जगतसिंह ने संवत् 1856 में सलेमाबाद जाकर आचार्य का आशीर्वाद प्राप्त किया, जिसके फलस्वरूप राजकुमार जयसिंह का जन्म हुआ, अतः इस राजवंश ने उन्नीसवीं सदी में इस संप्रदाय को बहुत प्रश्रय दिया और अनेक मेले आयोजित किये, जिनका उल्लेख इतिहास में मिलता है।